# परम गुरु एकाक्षर 'ओं'

[प्रो॰ नरेश कुमार धीमान्, चेयर प्रोफेसर, महर्षि दयानन्द सरस्वती चेयर (यूजीसी)
महर्षि दयानन्द सरस्वती विश्वविद्यालय, अजमेर (राजस्थान)]

मनुष्य इस जड़-चेतन जगत में क्षण-क्षण और कण-कण में क्रियाशील किसी ऐसी अदृश्य चेतन सर्वशक्तिमान परम सत्ता का अनुभव किया करता है, जो 'ज्ञान, क्रिया और बल'— तीनों में ही उससे अधिक है। वह जगत में हो रहे प्रतिपल परिवर्तन, प्रकृति के सौंदर्य, पक्षियों की चहचाहट, फूलों-से शिशुओं की भोली मुस्कराहट, सागर की अतल गहराईयों, पर्वत की गगन-चुंबी ऊंचाइयों, सूर्य-चंद्र के प्रकाश तथा रात के गहन अंधकार में सुदूर विशाल आकाश की गोद में टिमटिमाते सितारों आदि में—सर्वत्र उस अदृश्य परम सत्ता के साम्राज्य और अद्‌भुत नियामकता के रूप में उसका साक्षात् दर्शन कर आनंदित हुआ करता है। वैदिक दर्शन में इस परमसत्ता को ही ईश्वर कहा गया है।

संसार में सुख भी हैं और दु:ख भी। मनुष्य सुख की अभिलाषा में ही दु:ख भी झेलता है। परंतु अपने अनुभवों से उसने यह भी सीखा है कि भौतिक वस्तुओं—सुख-साधनों की प्राप्ति उसे क्षणिक सुख तो देती है, परम सुख नहीं। संसार सत् है, जीव सत् और चित्। सत्, चित् और आनंद तीनों जिसमें हों ऐसा तो वह सत्-चित्-आनंदघन परमेश्वर ही है। इस सच्चिदानंद की प्राप्ति में ही परम सुख है, आनंद है, परमानंद है। अत: संसार की सभ्य से सभ्य और जंगली से जंगली सभी प्रकार की जातियों में इस परम सत्ता के प्रति आकर्षण स्वाभाविक रूप से पाया जाता है। यह आकर्षण ही उपासना वृत्ति का जनक है। अत: मनुष्य में उपासनावृत्ति भी स्वाभाविक है। उसके ज्ञान के स्तर के अनुरूप उसकी उपासना-विधि में भेद हो सकता है, उपासना-वृत्ति में नहीं।

उपासना अर्थात् परम सत्ता की प्राप्ति का साधन। योगदर्शन के अनुसार परमेश्वर की उपासना का संबंध बाहर से नहीं, अंदर से है। इंद्रियां बाहर की ओर दौड़ती हैं। अत: जब तक इंद्रियाँ अन्तर्मुखी नहीं होती, तब तक परमेश्वर की उपासना अर्थात् ध्यान संभव नहीं। योगमार्ग से ही इंद्रियाँ अन्तर्मुखी हो सकती हैं, अत: योग का मार्ग ही उपासना का सच्चा मार्ग है। यहीं से अध्यात्म की यात्रा आरम्भ होती है। परमेश्वर के ज्ञान, बल और क्रिया की सर्वातिशयता का प्रतिक्षण अनुभव तथा परमेश्वर के प्रति दृढ़ अनुराग ही अध्यात्म-पथ का पाथेय है, राह-खर्च है, संबल है। परमेश्वर ही इस पथ का प्रदर्शक परम गुरु है। मनुष्य-देहधारी ज्ञानी पुरुष गुरु हो सकते हैं, परन्तु उनका ज्ञान, जीवन तथा समीपता सीमित होती है। सर्वथा दोष रहित भी उन्हें नहीं कहा जा सकता। उनकी अपनी उपयोगिता है। परन्तु गुरुओं के गुरु परम-गुरु तो परमेश्वर ही हैं, क्योंकि सर्वथा दोष रहित, सदा सर्वत्र साधक-शिष्य का मार्गदर्शन करने वाला तो केवल परमेश्वर ही है। योगीराज पतंजलि भी देश और काल की सीमाओं से परे, सदा, सर्वत्र, सबके हृदय में विराजमान रहने वाले, पूर्वजों के भी गुरु, शरीर-धर्म के दोषों से रहित, नित्य, निराकार परमात्मा को ही परम गुरु मानने का निर्देश करते हैं और उसका वाचक प्रणव अर्थात् 'ओम्' बताते हैं—

**स पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात्॥**
**तस्य वाचकः प्रणवः॥** —योगदर्शन 1.26-27

अथर्ववेद के अनुसार उद्‌गीथ अर्थात् 'ओम्' ही परम सहारा है—

**उद्‌गीथ उपाश्रयः।** —अथर्ववेद 15.3.6

'ओम्' ही आत्मा की चिकित्सा और आत्मा की मुक्ति करने वाला है—

**आत्मभैषज्यमात्मकैवल्यमोंकारः॥** -गोपथ ब्राह्मण 1.30

योगीराज महर्षि दयानन्द सरस्वती ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश के प्रथम समुल्लास को वास्तव में अपने ग्रन्थ के मंगलाचरण के रूप में प्रस्तुत किया हैऔर इस ग्रन्थ में एक ओंकार की बड़ी विस्तृत व्याख्या प्रस्तुत की है जो पूर्णतया शास्त्रीय ही नहीं है, अपितु ऐसा प्रतीत होता है कि उस व्याख्या में एक उपासक के जीवन का अनुभव प्रकट हो रहा है। वे लिखते हैं —

'''ओ३म्' जो यह ओङ्कार शब्द है, वह परमेश्वर का सर्वोत्तम नाम है, क्योंकि इसमें जो अ, उ और म् तीन अक्षर हैं वे मिलके एक 'ओ३म्' समुदाय हुआ है। इस एक से परमेश्वर के बहुत नाम आते हैं, जैसे—अकार से विराट्, अग्नि और विश्वादि। उकार से हिरण्यगर्भ, वायु और तैजसादि। मकार से ईश्वर, आदित्य और प्राज्ञादि नामों का वाचक और

ग्राहक है। उसका ऐसा ही वेदादि सत्यशास्त्रों में स्पष्ट व्याख्यान किया है कि प्रकरणानुकूल ये सब नाम परमेश्वर ही के हैं।'' (सत्यार्थ प्रकाश, प्रथम समुल्लास)

अ, उ और म् ये तीन अक्षर केवल व्याख्यान की दृष्टि से ही तीन हैं, वस्तुतः साधना में ये तीनों ही एक ध्वनि रूप होकर उपासक को एक-अद्वितीय पर ब्रह्म के साक्षात्कार में समर्थ बनाते हैं।

वेदों के अनेक मंत्रों में 'ओम्' पद का प्रयोग हुआ है—

**( क ) ओमासः चर्षणीधृतो विश्वे देवास आगत।**
**दाश्वांसो दाशुषः सुतम्॥** —ऋग्वेद 1.3.7

'ओम्'—वाच्य ब्रह्म की उपासना करने वाले, श्रमशील मनुष्यों को धारण करने वाले, दानशील स्वभाव वाले, हे दिव्य-गुणयुक्त समस्त विद्वान् लोगों! आप सत्कर्मों द्वारा ऐश्वर्य प्राप्ति में संलग्न इस जिज्ञासु को उत्कृष्ट ज्ञान प्रदान करते हुए सब ओर से प्राप्त हों।

**( ख ) ऋचो अक्षरे परमे व्योमन्**
**यस्मिन् देवा अधि विश्वे निषेदुः।**
**यस्तन्न वेद किमृचा करिष्यति**
**य इत् तद् विदुस्त इमे समासते॥** —ऋग्वेद1.164.39

(वि+ओम्+अन्—वी=प्रकृति, ओम्=ब्रह्म, अन्=जीव) जिसके एक कंधे पर प्रकृति तथा दूसरे कंधे पर जीव रहता है अर्थात् जीव और प्रकृति दोनों का जो आश्रयभूत है—उस सबसे महान ओम्-वाच्य अक्षर ब्रह्म में वेदों की समस्त ऋचाएं तथा समस्त सूर्यादि देवगण अधीन होकर स्थित हो रहे हैं। जो मनुष्य उस व्योमन् अर्थात् 'प्रकृति और जीव सहित ब्रह्म' का ज्ञान प्राप्त नहीं करता; वेद की ऋचाएं उस मूढ मनुष्य का क्या उपकार करेंगी? अर्थात् कुछ भी नहीं। जो मनुष्य ईश्वर-जीव-प्रकृति रूपी त्रिविध अक्षर ब्रह्म को जान लेते हैं, निश्चय ही संसार में उनकी सम्यक् प्रतिष्ठा होती है।

**( ग ) ओ३म् प्रतिष्ठ।** —यजुर्वेद 2.13

हे ओम्-वाच्य प्रभु ! आप मेरे हृदय में प्रतिष्ठित हों।

**( घ ) ओ३म् क्रतो स्मर।** —यजुर्वेद 40.15

हे कर्मशील जीव! तू 'ओम्' का स्मरण कर।

**( ङ) ओ३म् खं ब्रह्म।** —यजुर्वेद 40.17

ओम्-वाच्य ब्रह्म आकाश के समान व्यापक है।

**( च )ओ३म् वर्मीव धृष्णवा रुज।** —सामवेद पू. 5.11.8

हे धर्षणशील 'ओ३म्' प्रभु! आप कवच की भांति बनकर विपरीत-वृत्तियों से हमारी रक्षा करें।

इन सभी मंत्रों में 'ओम्' पद एक अक्षर-ब्रह्म का वाचक मात्र है। 'ओम्' पद का व्याख्यान वेदों में नहीं मिलता। ऐतरेय-शतपथ-गोपथ-तांड्य आदि ब्राह्मण ग्रंथों, छान्दोग्य-मुंडक-मांडूक्य-कठ-प्रश्न आदि उपनिषदों तथा योगदर्शन-गीता आदि ग्रंथों में 'ओम्' पद का प्रयोग और विस्तृत व्याख्यान दोनों ही मिलते हैं। 'मांडूक्य' नामक नन्हीं सी उपनिषद् तो 'ओम्' के व्याख्यान को ही समर्पित है। ये व्याख्यान 'ओम्' पद के संबंध में प्रचलित तीन धारणाओं पर आधारित हैं—

1. 'ओम्'—एक अक्षर रूप है।
2. 'ओम्'—प्रकृति-प्रत्यय के योग से बना है।
3. 'ओम्'—अ, उ, म्—इन तीन अक्षरों के योग से बना है।

वेदों में 'ओम्' अथवा 'ओ३म्' इस रूप में ही 'ओम्' पद मिलता है। 'ओम्' ही संस्कृत के संधि-नियमों के अनुसार कहीं-कहीं 'ओं' इस अनुस्वार वाले रूप में आ जाता है। वेदों में तो 'ओम्' के 'म्' को संधि-नियमों से मुक्त रखकर 'ओम्' अथवा 'ओ३म्' इसी रूप की मान्यता है।

ऋग्वेद आदि संहिताओं में प्राप्त 'ओम्' पद का व्याख्यान आचार्य सायण, महर्षि दयानंद आदि सभी वेद भाष्यकारों ने 3अव रक्षण गति.....धातु से बना हुआ मानकर ही किया है। 'ओम्' पद को, 'अ-उ-म्' तीन अक्षरों के योग से बना मानकर व्याख्यान की परंपरा ब्राह्मण ग्रंथों से आरंभ हुई प्रतीत होती है।

‘ओम्’ को एक अक्षर रूप मानने में तीन हेतु हो सकते हैं—

1. ‘ओम्’ पद एक अक्षर=अविनाशी ब्रह्म का वाचक है। ‘ओम्’ नाम है और अक्षर-ब्रह्म नामी, अतः नाम-नामी का अभेद रूप में व्यवहार करते हुए ‘ओम्’ पद को एक अक्षर मान लिया गया।

2. ‘ओम्’ पद को एक-अक्षर मानने में दूसरा हेतु यह हो सकता है कि ‘ओम्’ पद एक स्वर वाला है। वर्णों में स्वर-व्यंजन दोनों आ जाते हैं, परंतु अक्षर संज्ञा स्वरों की ही मानी जाती है; अतः एकाक्षर ओम् का अर्थ है एक स्वर वाला पद-विशेष, इसी आधार पर छांदोग्य उपनिषद् (1.4.4) ने ‘स्वर’ शब्द को ‘ओम्’ का पर्याय माना है—

**एष उ स्वरो यदेतदक्षरमेतदमृतमभयं तत्प्रविश्य देवा अमृता अभवन्॥**

—यह ‘ओम्’ ही स्वर है, यह अमृत तथा अभय है, इसे प्राप्त कर देव लोग अमृत और अभय हो गए।

3. तीसरा हेतु ‘ओम्’ का सानुनासिक उच्चारण है और इस आधार पर ‘ओम्’ का सानुनासिक रूप ओँ होगा जो लेख में सुविधाजनक होने से ‘ओं’ इस रूप में लिखा जाता है।

वैदिक साहित्य में एक अक्षर ब्रह्म के ही वाचक होने से ‘ओम्, ओ३म् तथा ओं’ तीनों का ही प्रयोग और व्याख्यान अभेद रूप से किया गया है।

उच्चारण के आधार पर ‘ओम्’ का सानुनासिक रूप ‘ओँ’ है। संस्कृत की वर्णमाला में स्वरों के अंतर्गत ‘ओ’ एक वर्ण है। अनुनासिक ( ँ ) स्वर का ही गुण होता है, यह अलग से कोई अक्षर नहीं है। प्राचीन ग्रंथों में ओंकार को प्रकट करने के लिए ‘ॐ’ ऐसा अक्षर मिलता है। इसमें लगा चंद्रबिंदु ( ँ ) भी इसी धारणा को पुष्ट करता है कि ‘ओम्’ का उच्चारण सानुनासिक ‘ओँ’ एकाक्षर की भाँति रहा होगा।

शिरोरेखा से ऊपर मात्रा चिह्न वाले वर्णों में अनुनासिक चंद्रबिंदु ( ँ ) को अनुस्वार ( ं ) के रूप में ही लिखा जाता है, जैसे—गोंद, पैंसठ, दोनों आदि। अन्यत्र अनुनासिक रूप में ही जैसे—आँख, हँस आदि। सानुनासिक ‘ओँ’ ही लेख में सुविधा होने से ‘ओं’ इस प्रकार लिखा जाएगा।

योग साधना में ओंकार की लंबी गूँज आज भी सानुनासिक ‘ओं’ के रूप में ही उच्चरित होती है। ‘ओं’ की लम्बी गुंजार के बाद जैसे ही ‘ओं’ ध्वनि शांत होती है, स्वभावतः मुँह बंद होता है, आपस में होठ मिलते हैं और वह अनुनासिक ध्वनि ही सोम्य ‘म्’ के रूप में उच्चरित हो जाती है।

संभव है कि आरंभ में ‘ओम्’ अथवा अनुस्वार वाला ‘ओं’ उच्चारण हो और यह अनुस्वार ही बाद में अनुनासिक बनकर ‘ओँ’ को प्रकट करने के लिए ‘ॐ’ ऐसा अक्षर निश्चित कर लिया गया हो।

इस प्रकार ‘ओम्’ से ‘ओं’ तथा ओं से सानुनासिक ‘ओँ’ अथवा ‘ॐ’ का विकास हुआ प्रतीत होता है। प्लुत उच्चारण दर्शाने के लिए ‘ओम्’ ही ‘ओ३म्’ इस रूप में लिखा जाता है। ओ के बाद लिखा ३ का अंक त्रिमात्रिक प्लुत उच्चारण का संकेत करता है। अथवा उच्चारण की गति विपरीत क्रम में होने पर विपरीत क्रम में ‘ओम्’ ध्वनि का विकास हो सकता है।

‘ओंकार’ शब्द ‘ओं’ एकाक्षर से ‘कार’ प्रत्यय जोड़कर बनता है, जैसे—आकार, इकार, तकार आदि। अष्टाध्यायी के 3.3.108 सूत्र पर लिखा वार्तिक ‘**वर्णात् कारः**’ इसमें प्रमाण है। इस प्रकार ‘ओंकार’ शब्द का शास्त्रीय प्रयोग भी ‘ओम्’ को एकाक्षरी सिद्ध करता है—

**एतद् वै सत्यकाम परं चाऽपरं च ब्रह्म यदोंकारः।**

—प्रश्नोपनिषद् 5.2

**सर्वमोंकार एव यच्चान्यत् त्रिकालातीतं तदप्योंकार एव।**

—मांडूक्य उपनिषद् 1

**ओङ्कार एवेदं सर्वम्॥** —छांदोग्य उपनिषद् 2.23.3

**वेद्यं पवित्रमोङ्कारः।** —गीता 9.17

‘ओम्’ पद का एकाक्षर रूप में प्रयोग भी अनेक स्थलों पर पाया जाता है—

**ओमित्येतदक्षरमुद्गीथमुपासीत।** —छांदोग्य उपनिषद्—1.1.1

**ओमित्येदक्षरमिदं सर्वं तस्योपव्याख्यानम्।**

—मांडूकय उपनिषद्—1

**एतद्ध्येवाक्षरं ब्रह्म एतदेवाक्षरं परम्।** —कठोपनिषद् 2.16

**ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म।** —गीता 8.13

**ओं तत्सदिति निर्देशो ब्रह्मणस्त्रिविधः स्मृतः।**

—गीता 17.23